शब्द–ब्रह्म
ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
17 मई 2015
पीअर रीव्यूड रिसर्च जर्नल

सम्पादकीय

राष्ट्रीय शर्म है किसानों की आत्महत्या

डॉ.पुष्पेन्द्र दुबे

किसानों की आत्महत्या का दौर थमने का नाम नहीं ले रहा है। देश के वरिष्ठ चिंतक, वैज्ञानिक, अर्थशास्त्री, समाजशास्त्री ऐसे न जाने कितने बुद्धिजीवी इस विषय पर अब तक हजारों पृष्ठ रंग चुके हैं। राजनीतिक नेतृत्व ने न जाने कितनी बार इस देश की जनता के साथ वादा किया कि अब किसानों को आत्महत्या नही करने दी जाएगी, परंतु हकीकत कुछ और ही है। जब इस देश में पहली बार समाजशास्त्र को विषय के रूप में महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम में सम्मिलित किया गया, तब इस देश में आधुनिक शिक्षा के अनुरूप समाजशास्त्र विषय से संबंधित पुस्तकें नहीं थीं। जहां यह शास्त्र विकसित हुआ था, वहां की पुस्तकें अध्यापन के लिए अनुशंसित कर दी गईं। अब चूंकि उस देश में भारतीय ग्रामीण समाज की कोई कल्पना ही नहीं थी, इसलिए पश्चिम के समाजशास्त्र को भारत के समाजशास्त्र पर लागू कर दिया गया। ऐसा ही अर्थशास्त्र के संबंध में भी हुआ। ऐसी नासमझी की शिक्षा का परिणाम आज हम सभी के सामने दिखाई दे रहा है। जब चिंतन ही दोषपूर्ण होगा तो उससे जो भी हल निकाले जाएंगे, वे भी दोषयुक्त होंगे। आज किसानों की आत्महत्या के मद्देनजर केंद्र और राज्य सरकारों ने हजारों करोड़ के पैकेज दिए। यहां तक कि किसानों का 75 हजार करोड़ का ऋण भी माफ कर दिया। इसके बाद भी किसानों की स्थिति में कोई सुधार न होना हमारे दोषपूर्ण चिंतन का बढ़िया उदाहरण है। समस्या के मूल में न जाते हुए अकेले पैकेज जारी करने, लुभावने वादे करने, अखबारों में बड़े-बड़े विज्ञापन छपाने, मुस्कराते हुए किसान का फोटो देने से आत्महत्याएं रुकने वाली नहीं हैं। मीडिया का सामाजिक सरोकार तो तब नजर आया जब फिल्म एक्टर सलमान खान के लिए मीडिया ने दिन-रात एक कर दिया। एक अंग्रेजी दैनिक ने अपने पांच पृष्ठ सलमान को समर्पित कर दिए। वहीं किसान अथवा गरीब की व्यथा-कथा के लिए समाचार पत्रों के पास मिलीमीटर में भी जगह नहीं है। कभी-कभी यह लगता है कि हम कैसे विकास की बात कर रहे हैं ? जब हमारी नींव दिनोंदिन कमजोर होती जा रही है, उस पर हम अपने विकास के महल को कैसे टिकाए रख सकेंगे ? यदि विकास हो रहा है तो फिर किसान आत्महत्या क्यों कर रहा है ? यदि हम अन्न के मामले में स्वावलंबी हो गए हैं तो फिर हमें पचास प्रकार के अनाज-दलहन-तिलहन का आयात क्यों करना पड़ रहा है ? आज किसान अपनी किसानी छोड़ने पर क्यों मजबूर है ? वह शहरों की ओर पलायन कर भीड़ का हिस्सा बनता जा रहा है। कोई भी राजनीतिक सत्ता समस्याओं के मूल कारणों को दूर करने में रुचि नहीं लेती। आजादी आंदोलन के समय भी जब अंग्रेजों के सामने इस देश के नेता पूर्ण स्वतंत्रता की मांग रखते थे तो वे इस बात को छोड़कर बाकी सारी चर्चाएं करते थे। ऐसा ही कुछ अपने देश की सरकारें कर रही हैं। सरकारें गांवों को अपना गुलाम बनाकर रखना चाहती हैं और ग्रामीण भी अपने उद्धार की आशा में सरकारों की

ISSN 2320 – 0871
17 मई 2015

तरफ मुंह करके खड़े हुए हैं। पहले अंग्रेजों ने इस देश की खेती के आसपास विकसित हुए वैकल्पिक उद्योग धंधों को नष्ट किया, उसके बाद हमारी अपनी ही सरकारों ने छोटे उद्योगों को बाजार की प्रतिस्पर्धा में झोंक दिया। परिणामस्वरूप वे बाजार की आंधी में टिक नहीं पाए। जब गांव में खेती नहीं होती या अकाल पड़ता था, तब खेती से जुड़े उद्योग धंधे राहत का काम करते थे। किसान को हिम्मत बंधी रहती थी। आज हिम्मत बंधाने का कोई भी उद्योग ग्रामीणों के पास नहीं है। महात्मा गांधी ने अपने रचनात्मक कार्यक्रमों से ग्रामीण किसानों में यही हिम्मत बंधाने का काम किया था। उसमें खादी ग्रामोद्योग एक प्रमुख रचनात्मक कार्यक्रम था, जिसने लोगों में आत्मविश्वास पैदा किया। आर्थिक सुरक्षा की भावना में वृद्धि की। आज इस देश के गांवों को खेती के साथ जुड़े हुए लघु उद्योगों की महती आवश्यकता है। कम पूंजी में गांव के कच्चे माल को पक्के माल में बदलने की तकनीक से हमारे गांव सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक दृष्टि से संपन्न हो सकते हैं। गांव में बनने वाली वस्तुओं को आरक्षित करके ग्रामीण उद्योगों का रक्षण किया जा सकता है। कृषिप्रधान देश में किसान आत्महत्या के लिए मजबूर हो, आजाद भारत में इससे बड़ी राष्ट्रीय शर्म की और कौन-सी बात हो सकती है ?